THE TIMES OF INDIA

Date:17-01-24

Looking For Trillions

Oxfam believes trillionaires are a decade away. Could they be already around?

TOI Editorials

Oxfam brought out its annual inequality report to coincide with a gathering of the world's business elite at Davos. The report uses a shock and awe tactic to highlight inequality. It says that at the current rates of growth, it could take 230 years to end poverty but we could have our first trillionaire in just 10 years. Trillionaires are a measure of their financial assets. They may already exist.

Nothing beats oil | Oxfam estimated oil and gas companies were their big winners in the recent past. How should one value people who control them? Saudi Aramco has a market value in excess of $2 trillion. It's state-controlled. The state in question is an absolute monarchy. Jeff Bezos figures often in the Oxfam report and the House of Saud not at all. But it's the monarchy that has trillions at its disposal.

Opaque holdings | Conversations about trillionaires are based on an assumption that people know what the rich own. That may be misplaced. Consider the mysterious Brunei Investment Agency (BIA), the country's wealth fund under the Sultan's control. It owns the Dorchester Collection, a chain of luxury hotels. But boycott calls over Brunei's sharia laws have made BIA mask an already opaque investment portfolio. Who knows their true worth after four decades of investment?

Finally, funny trillions | The key idea underlying trillions is creation of business value. Trust central banks to turn the idea on its head. The US Federal Reserve has made trillions into a mere matter of creating money out of nothing at all through a tool called quantitative easing. A balance sheet that was less than $1 trillion before the global financial crisis in 2008 had expanded to almost $9 trillion by 2022.

दैनिक भास्कर

Date:17-01-24

राजनीतिक नैतिकता को कोर्ट के फैसलों या कानूनों में खोजना बेमानी है

संपादकीय

पिछले 50 साल से दल-बदल का दंश प्रजातंत्र की जड़ों को खोखला करता रहा है। करीब 38 साल पहले इसके खिलाफ बना कानून दो संविधान संशोधनों और सुप्रीम कोर्ट के दर्जनों फैसलों के बावजूद अपने मकसद में नाकाम रहा। अब महाराष्ट्र दल-बदल का मामला स्पीकर के फैसले के बाद फिर इसी कोर्ट में आने के आसार हैं। उद्धव सेना ने इस फैसले को चुनौती दी है। कानून की लगातार असफलता ने साबित किया कि नैतिक मूल्यों में गिरावट को कानून या कोर्ट के फैसले से नहीं रोका जा सकता। भारत में जनता आमतौर पर पार्टी और उसके नेता के नाम पर वोट देती है और इस लिहाज से अगर चुनने के बाद दल-बदल होता है तो वह जनमत के साथ धोखा है। लेकिन ऐसे में सवाल उठता है कि जब एक पूरी पार्टी दूसरी पार्टी के साथ मिलकर या अकेले चुनाव लड़ती है है और फिर जिस दल के खिलाफ चुनाव लड़ती है उसी के साथ सरकार बना लेती है तो क्या यह 'जनमत पर डाका' नहीं है? लेकिन दल-बदल कानून तो छोड़िए, संविधान भी इसे वैध यानी नैतिक मानता है। ऐसे में अगर एक सांसद या विधायक चुने जाने के बाद दल बदलता है तो वह गलत कैसे माना जाए? फिर विधायिकाओं में चर्चा अगर इसलिए होती है कि उससे जनता को ओपिनियन बनाने में मदद मिलती है तो यही मदद 'माननीयों' को क्यों न उपलब्ध हो? यह तो आदर्श तार्किक स्थिति। लेकिन अक्सर देखा गया है कि पैसे या पद या दोनों के लालच में ये जन-प्रतिनिधि पाला बदल लेते हैं। जनता ठगी रह जाती है, जब ऐसे दल-बदल से सरकारें रातों-रात पलट जाती हैं। यह प्रश्न राजनीतिक नैतिकता का है और इसका जवाब कानून, संविधान या सुप्रीम कोर्ट के फैसलों में तलाशना भूसे के ढेर में सुई तलाशने जैसा है।

Date:17-01-24

सरकार का कर्ज जीडीपी के बराबर है!

अंशुमान तिवारी, (मनी-9 के एडिटर)

डॉ. आम्बेडकर को याद करने का यह सबसे मौजूं वक्त है। इसलिए नहीं कि जनवरी संविधान लागू होने का महीना है, बल्कि इसलिए कि आईएमएफ ने भारत को चेतावनी भेजी है कि सरकार का कर्ज (राज्य और केंद्र) भारत की जीडीपी के बराबर होने वाला है। यह खतरे का बिंदु है। इस चेतावनी का डॉ. आम्बेडकर से गहरा रिश्ता है। अगस्त 1949 में संविधान सभा की बहस (अनुच्छेद 292- जो पहले 268 था) में उन्होंने कहा था कि संसद को कानून बनाकर सरकार के की सीमा तय करनी चाहिए। लेकिन भारत में ऐसा नहीं हुआ। और कर्ज का पानी नाक से होकर हलक के भीतर तक पहुंच गया।

कर्ज की गठरी कितनी भारी: दो साल पहले श्रीलंका में जब कर्ज का संकट खौल रहा था, तब आईएमएफ ने भारत के कर्ज को लेकर पहला अलार्म बजाया था। मगर सरकारी बिगुल वादन में कौन सुनता ? किसी देश के कुल सार्वजनिक कर्ज (केंद्र व सरकारों और सरकारी कंपनियों का कर्ज) के जीडीपी के बराबर पहुंचने का मतलब है, पूरा देश मिलकर जितना उत्पादन करता है, उसके कुल मूल्य से ज्यादा कर्ज मुट्ठी भर सरकारों ले रखा है। विश्व बैंक और आईएमएफ के

पैमानों पर किसी देश के पब्लिक डेट का अधिकतम स्तर जीडीपी का 60 फीसदी होना चाहिए। इससे ऊपर जाने के अपार खतरे हैं। भारत संकटग्रस्त देशों के एक ऐसे समूह का हिस्सा है, जिनका कुल सार्वजनिक कर्ज उनके जीडीपी का शत-प्रतिशत या इससे ज्यादा है। इनमें वेनेजुएला, इटली, पुर्तगाल, ग्रीस जैसी बीमार अर्थव्यवस्थाएं और मोजाम्बिक, भूटान, सूडान जैसे छोटे मुल्क हैं।

कोविड पर कितनी तोहमत : कोविड से बढ़े खर्च के कारण सरकारी कर्ज बढ़ना खालिस अर्धसत्य है। सरकारी आर्थिक समीक्षा बताती रही है कि केंद्र सरकार का कर्ज और जीडीपी अनुपात 2016 के बाद से बिगड़ना शुरू हुआ था 2016 में कर्ज जीडीपी के अनुपात में 45 फीसदी था, जो 2020-21 में 60 फीसदी पर पहुंच गया। राज्य तो और भी बड़े कर्ज बहादुर हैं। 2016 में राज्यों का कर्ज जीडीपी के अनुपात में 25 फीसदी पर था, जो अब 31 फीसदी है। इस तरह केंद्र और राज्यों और सरकारी कंपनियों का कर्ज यानी कुल पब्लिक डेट जीडीपी के बराबर हो चुका है।

खतरा कितना बड़ा है : भोले भारतीय समझते हैं विदेशी कर्ज ही खतरनाक है। आईएमएफ ने कहा है कि भारत का घरेलू कर्ज विस्फोटक स्तर पर है। यहां अर्थव्यवस्था सरकार और बैंकों के गठजोड़ के कारण कर्ज- जाल में फंस रही है। बैंकों के कुल कर्ज होल्डिंग में सरकारी कर्ज का हिस्सा 30 फीसदी की खतरनाक ऊंचाई पर है। इस पैमाने पर पाकिस्तान, घाना और इजिप्ट की हालत ही भारत से ज्यादा खराब है। वित्त वर्ष 2023-24 में 15.43 लाख करोड़ का कर्ज कोविड के दौरान लिए गए कर्ज से ज्यादा है। नया कर्ज महंगी ब्याज दरोंपर लिया जा रहा है, क्योंकि सरकार के दस साल के कर्ज की ब्याज दर अब रिकॉर्ड सात फीसदी की ऊंचाई पर है। बीते साल की सरकारी आर्थिक समीक्षा ने बताया था कि केंद्र सरकार का करीब 70 फीसदी कर्ज लंबी नहीं बल्कि छोटी अवधि यानी 10 साल तक का है। यह इसलिए क्योंकि लंबे वक्त तक ब्याज (2024 के कुल बजट खर्च का 24 फीसदी) का बोझ उठाने की कुव्वत नहीं है। वित्त मंत्रालय की तिमाही कर्ज रिपोर्ट ने बताया है 2023 में करीब 4.21 लाख करोड़ का पुराना कर्ज चुका। पर 2023 से 2028 के बीच सामान्य औसत से करीब चार गुना कर्ज चुकाने के लिए सिर पर खड़ा होगा।

सबसे बड़ा जोखिम : कर्ज का बोझ सरकार तक सीमित नहीं है। कंपनियों और निजी लोगों ने भी तो कर्ज ले रखा है। इसलिए निवेशक किसी देश के कर्ज को समग्रता में देखते हैं। समग्र कर्ज की रोशनी में बचतों और कर्ज का अनुपात डरावना हो चला है। अर्थव्यवस्था में बचत की वास्तविक गणना शुद्ध बचत पर केंद्रित होती है यानी बचत तो कर्ज के अलावा है। शुद्ध बचत को सरकारों के कुल घाटे के अनुपात में देखा जाता है क्योंकि यही बचत सरकारों के पास बैंकों के जरिये कर्ज बनकर पहुंचती है। 2023 में भारतीय परिवारों की शुद्ध बचत 50 साल के न्यूनतम स्तर पर जीडीपी के अनुपात में 5.1 फीसदी पर आ गई थी। जबकि इस वित्त वर्ष में समग्र राजकोषीय घाटा (केंद्र 5.9%, राज्य 3.1%) करीब नौ फीसदी के बीच रहने के आकलन हैं। राजकोषीय घाटा ही सरकार के कुल कर्जका दूसरा नाम है। इस हिसाब से पता चलता है कि देश के परिवार जितना बचा रहे हैं, उससे अधिक तो अकेले सरकार को कर्ज लेना होगा। यही सबसे खतरनाक पक्ष है। देश की बचत कुल कर्ज जरूरतों के लिए पर्याप्त नहीं है। नोट छापने होंगे या विदेश से कर्ज लेना होगा।

अमेरिका से तुलना न करें : जीडीपी और कर्ज के अनुपात की चर्चा चलते ही लोग अमेरिका को बीच में लाते हैं, जिसका कर्ज जीडीपी से कई गुना ज्यादा है। मगर अमेरिका का मामला जरा फर्क है। वह दुनिया की केंद्रीय करेंसी यानी डॉलर का मालिक है। पूरी दुनिया अमेरिका से डॉलर लेकर कर्ज देती है। अमेरिकी सरकार के बांड दुनिया के सबसे सुरक्षित निवेश हैं। इसके बाद भी अमेरिका में कर्ज का निर्धारित स्तर पार होते ही सरकार रुक जाती है। विपक्ष सवाल पूछता है।

आम्बेडकर यही चाहते थे कि सरकार के कर्ज की सीमा तय की जाए। कर्ज ज्यादा चाहिए तो संसद को वजह बताई जाए। सवालों के जवाब दिए जाएं, मगर ऐसा नहीं हुआ और फंस गए जाल में।

डरना जरूरी है : भारत की सरकार का कर्ज देश के बैंकों को एक डूम लूप में धकेल रहा है। डूम लूप यानी किसी देश की सरकार अपने बैंकों से कर्जलेते-लेते डिफॉल्ट हो जाती है। बैंक भी डूबते हैं और सरकार भी। 1998 में रूस और 2001-02 में अर्जेंटीना इसी तरहसे बरबाद हुए थे।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:17-01-24

विकास संबंधी बहस

संपादकीय

नीति आयोग द्वारा इस सप्ताह जारी एक और चर्चा पत्र के अनुसार बीते नौ वर्षों में करीब 24.82 करोड़ भारतीय बहुआयामी गरीबी से बाहर निकलने में कामयाब रहे। नीति आयोग के सदस्य रमेश चंद और वरिष्ठ सलाहकार योगेश सूरी द्वारा संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम तथा ऑक्सफर्ड नीति एवं मानव विकास पहल की मदद से तैयार की गई इस रिपोर्ट का इरादा यह दिखाना है कि बीते नौ वर्षों में विभिन्न सरकारी कार्यक्रमों ने बहुआयामी गरीबी पर क्या असर डाला। पत्र लेखकों के व्यक्तिगत विचारों को दर्शाता है और इसमें पाया गया कि बहुआयामी गरीबी 2013-14 के 29.17 फीसदी से कम होकर 2022-23 में 11.28 फीसदी रह गई। माना जा रहा है कि जल्दी ही यह गरीबी घटकर एक अंक में रह जाएगी। ध्यान देने वाली बात है कि ताजा राष्ट्रीय बहुआयामी गरीबी सूचकांक राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-4 (2015-16) और पांच (2019-20) पर आधारित है। चूंकि उपयुक्त प्रासंगिक अवधि के लिए आंकड़े अनुपलब्ध थे इसलिए अध्ययन में उपलब्ध आंकड़ों के आधार पर ही आकलन किया गया।

बहुआयामी गरीबी सूचकांक को पारंपरिक मानकों की तुलना में बेहतर संकेतक माना जाता है। उदाहरण के लिए आय के अनुमान हासिल करना मुश्किल है। इसी प्रकार खपत सर्वेक्षण गरीबी और बेहतरी के स्तर का आकलन करने के लिहाज से अपर्याप्त पाए गए हैं। इसके अलावा संभव है ये तरीके नीतिगत हस्तक्षेप के असर को पूरी तरह से आकलित न कर पाते हों। वैश्विक बहुआयामी गरीबी सूचकांक तीन व्यापक क्षेत्रों में 10 संकेतकों को शामिल करता है। ये हैं शिक्षा, स्वास्थ्य और जीवन स्तर। वैश्विक संकेतकों के अलावा भारतीय संस्करण में मातृत्व स्वास्थ्य और बैंक खाते भी शामिल हैं। निश्चित तौर पर बहुआयामी गरीबी सूचकांक जहां एक व्यापक तस्वीर पेश करता है वहीं आय और व्यय के आंकड़ों की जरूरत की भी अनदेखी नहीं की जानी चाहिए।

गरीबी के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर केंद्रित पर नजर डालते और अधिक आंकड़ों की मदद से बेहतर तस्वीर और बेहतर सूचित नीति निर्माण प्राप्त किया जा सकता है। 2017-18 में हुए अंतिम उपभोक्ता व्यय सर्वेक्षण को सरकार ने यह कहते हुए खारिज कर दिया था कि उसके आंकड़े गुणवत्तापूर्ण नहीं हैं। बीते कुछ दशकों में उच्च आय वृद्धि और नीतिगत हस्तक्षेप की मदद से गरीबी में काफी कमी आई। जैसा कि इस पत्र में कहा गया है बहुआयामी गरीबी के शिकार लोगों

की तादाद 2005-06 के बाद के 15 वर्षों में 40.38 फीसदी कम हुआ है। गरीबी की तीव्रता में भी काफी कमी आई है। गरीबी में कमी उत्सव मनाने लायक बात है लेकिन भारत को अभी भी इस क्षेत्र में लंबा सफर तय करना है। ऐसे में नीतिगत प्रयास इस बात पर केंद्रित होने चाहिए कि कैसे दीर्घावधि में टिकाऊ आर्थिक वृद्धि हासिल की जाए। भारत को अभी भी निम्न-मध्य आय वाला देश माना जाता है। प्रति व्यक्ति आय में सतत उच्च वृद्धि से ज्यादा तादाद में लोग गरीबी से उबरेंगे और उनके जीवन में बेहतरी आएगी।

इसके अलावा राज्य स्तर के आंकड़े गहरी असमानता दिखाते हैं। देश के विकास की प्रक्रिया में कुछ राज्य बहुत पीछे छूट गए हैं। ऐसे क्षेत्रों में अधिक नीतिगत ध्यान देने की आवश्यकता होगी ताकि संतुलित और समावेशी विकास हासिल किया जा सके। इसके अलावा सुधार दिखाने वाले मानकों पर भी और काम करने की आवश्यकता होगी। उदाहरण के लिए शिक्षा के स्तर पर स्कूली शिक्षा वाले वर्षों को शामिल किया जाता है। बहरहाल, यह बात सभी जानते हैं कि देश में शिक्षण से हासिल नतीजे वांछित स्तर से बहुत कम हैं। ऐसे में नीतिगत हस्तक्षेप के तहत सुधार के अगले स्तर पर ध्यान देना होगा। इस दौरान सरकारी व्यय को नए सिरे से निर्धारित करना होगा। उदाहरण के लिए अगर बहुआयामी गरीबी में करीब 11 फीसदी की कमी आई है तो क्या सरकार को देश की बहुसंख्यक आबादी को नि:शुल्क खाना देने पर विचार करना चाहिए? इसी प्रकार क्या नकदी हस्तांतरण आगे बढ़ने का मार्ग है या फिर क्या राज्य के संसाधनों का इस्तेमाल विकास में आई कमी को दूर करने के लिए किया जाना चाहिए, मसलन शिक्षा का स्तर सुधारने के लिए? ऐसे कई नीतिगत प्रश्न हैं जिन पर बहस की जरूरत होगी।

Date:17-01-24

वृद्धि में असमानता का भौगोलिक पहलू

नितिन देसाई

बीते 30 वर्षों में देश के विभिन्न राज्यों में आय संबंधी असमानता तेजी से बढ़ी है। जिन राज्यों में प्रति व्यक्ति राज्य घरेलू उत्पाद (एसडीपी) 2019-20 में राष्ट्रीय औसत से ऊपर और नीचे था, उनका भौगोलिक विभाजन एकदम स्पष्ट है। अधिक आय वाले राज्य देश के दक्षिण, पश्चिम और पूर्वोत्तर में हैं जबकि कम आय वाले प्रदेश उत्तर, मध्य तथा पूर्व में स्थित हैं।

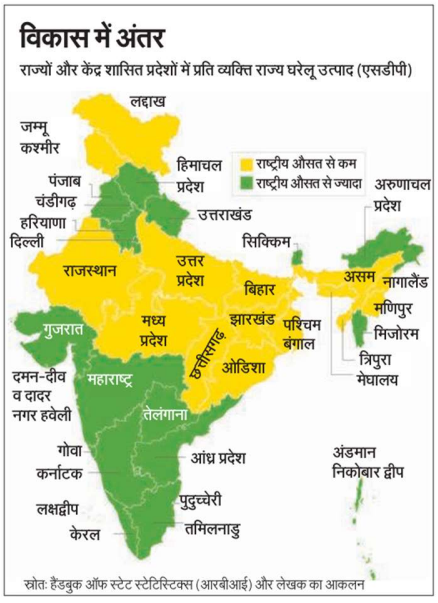

सन 1990-91 में उच्च आय वाले राज्यों का प्रति व्यक्ति एसडीपी कम आय वाले प्रदेशों का 1.7 गुना था। 2019-20 तक यह अनुपात बढ़कर 2.5 गुना हो गया। दो क्षेत्रों में अंतर और बदलाव और भी अधिक था। विनिर्माण में उच्च और निम्न आय वाले राज्यों के बीच प्रति व्यक्ति एसडीपी का अनुपात 1990-91 के 2.4 गुना से बढ़कर 2019-20 में 3.6 गुना हो गया। सेवा क्षेत्र में इसी अवधि में यह अनुपात 2.0 से बढ़कर 2.9 हो गया। दोनों तरह के राज्यों के बीच अंतर का सबसे अहम कारण है उच्च आय वाले राज्यों में विनिर्माण और सेवा क्षेत्र की

मजबूत वृद्धि। दक्षिण, पश्चिम के राज्य और दिल्ली तथा आसपास के राज्य ऐसे ही हैं। कम आय वाले राज्यों की कमजोरी है इन क्षेत्रों में पिछड़ना और इसे दूर करके ही वे वृद्धि हासिल कर पाएंगे।

यह कैसे किया जा सकता है? इन दिनों कम आय वाले राज्यों मे अधोसंरचना विकास पर काफी जोर दिया जाता है। क्या इससे उनकी वृद्धि संभावनाओं में अंतर उत्पन्न हो सकता है? अगर उच्च और निम्न आय वाले राज्यों की अधोसंरचना पर नजर डालें तो कोई खास अंतर नहीं नजर आता। गंगा के मैदानी इलाकों में मौजूद राज्य सड़कों की लंबाई के मामले में राष्ट्रीय औसत से ऊपर हैं। 2019 में वहां प्रति 100 वर्ग किलोमीटर इलाके में 165 किलोमीटर सड़कें थीं। 2022 में वहां प्रति 1,000 वर्ग किलोमीटर इलाके में 21 किलोमीटर रेल मार्ग था। इतना ही नहीं उच्च वृद्धि वाले कई राज्य राष्ट्रीय औसत से नीचे हैं। सड़क के मामले में तेलंगाना और आंध्र प्रदेश तथा रेल लाइनों की लंबाई में महाराष्ट्र, तेलंगाना और कर्नाटक।

प्रति व्यक्ति बिजली की उपलब्धता भी अधोसंरचना का ऐसा ही एक क्षेत्र है जहां अंतर नजर आता है तथा जो गंगा के मैदानी और पूर्वी राज्यों में राष्ट्रीय औसत से नीचे है। 2022-23 में इसका राष्ट्रीय औसत 1,221 किलोवॉट था। ऐसा इस तथ्य के बावजूद है कि पूर्वी राज्य कोयले का स्रोत हैं जो बिजली उत्पादन के लिए सबसे अहम जरिया है। क्या इस अंतर को आंशिक तौर पर नवीकरणीय बिजली उत्पादन के विस्तार से समझा जा सकता है? या फिर यह उच्च वृद्धि के कारण मांग में अंतर का परिणाम है?

कम आय और उच्च आय वाले राज्यों के बीच सबसे मुखर अंतर उद्यमिता के क्षेत्र में है। अंतर का एक पैमाना संगठित क्षेत्र की फैक्टरियों के वितरण में अंतर भी है। इसमें वे फैक्टरियां शामिल हैं जो उद्योगों के वार्षिक सर्वेक्षण (एएसआई) में शामिल हैं। 2019-20 के एएसआई में फैक्टरियों की संख्या, स्थायी पूंजी, और रोजगार में उच्च आय वाले राज्यों की हिस्सेदारी करीब 75 फीसदी थी। एक अन्य मानक पर देखें तो सबसे अमीर 100 भारतीयों में सभी उद्यमी हैं और भारत के 91 निवासियों में से 87 उच्च विकास वाले राज्यों में रहते हैं।

उदारीकरण के बाद के दौर में वृद्धि का एक अहम जरिया सेवा क्षेत्र रहा खासकर सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र की कंपनियां। अब सकल घरेलू उत्पाद में इसकी हिस्सेदारी 7.4 फीसदी है और वह 54 लाख लोगों को रोजगार देता है। ये कंपनियां चुनिंदा उच्च आय वाले राज्यों में स्थित हैं और पश्चिम बंगाल (कोलकाता) एक अपवाद है। हाल के दिनों में जयपुर, इंदौर, भोपाल और भुवनेश्वर जैसे कम आय वाले प्रदेशों के राज्य भी सूचना प्रौद्योगिकी केंद्र के रूप में उभरे हैं, लेकिन उत्तर के राज्यों में अभी भी ऐसे केंद्र नहीं हैं।

प्रति व्यक्ति एसडीपी में बढ़ते अंतर का प्रमुख स्पष्टीकरण इस तथ्य में निहित है कि 1991 के उदारीकरण के बाद निवेश में बदलाव हुआ और सरकारी के बजाय निजी निवेश बढ़ने लगा। सन 1990-91 से 2019-20 के बीच सकल जमा पूंजी निर्माण यानी मोटे तौर पर ठोस निर्माण में सरकारी क्षेत्र की हिस्सेदारी 40 फीसदी से घटकर 23 फीसदी रह गई। इसी अवधि में निजी क्षेत्र की हिस्सेदारी 18 फीसदी से बढ़कर 38 फीसदी हो गई। इसलिए बड़े उपक्रमों की उद्यमिता क्षमता का काफी हिस्सा निजी क्षेत्र में होना शायद उत्तर-मध्य और पूर्व तथा दक्षिण, पश्चिम और पूर्वोत्तर के राज्यों के बीच प्रति व्यक्ति आय में अंतर की सबसे बड़ी वजह है।

वृद्धि संबंधी प्रदर्शन में अंतर की एक और अहम वजह है श्रम की उपलब्धता के हालात, खासतौर पर उत्तर और मध्य क्षेत्र के राज्यों में। इन राज्यों में शहरी श्रम शक्ति भागीदारी दर तथा नियमित वेतन वाले श्रमिकों का प्रतिशत राष्ट्रीय

औसत से कम है। यह भी ध्यान दिया जा सकता है कि शहरी श्रम शक्ति में महिलाओं की भागीदारी भी राष्ट्रीय औसत से कम है। परंतु इस कमी से अधिक मायने रखने वाली बात यह है कि इंजीनियरिंग शिक्षा तक पहुंच के मामले में भी इनमें काफी अंतर है। देश में करीब 70 फीसदी इंजीनियरिंग सीटें उच्च आय वाले राज्यों में हैं और यह भी एक बड़ी वजह है जिसके चलते ज्ञान आधारित और उच्च तकनीक वाले उद्योगों को वे आकर्षित करते हैं।

प्रति व्यक्ति आय आधार पर भौगोलिक विभाजन को दूर करने का एक उपाय यह है कि कम आय वाले राज्यों में उद्यमिता और श्रम कौशल को बढ़ावा दिया जाए। उत्तर और मध्य भारत तथा शायद पूर्व के राज्यों में स्वतंत्र उद्यमिता को बढ़ावा देना कठिन हो सकता है लेकिन यह असंभव नहीं है। जरूरत इस बात की है कि इन क्षेत्रों को उच्च आय वाले राज्यों से जोड़ दिया जाए। फिलहाल वाहन निर्माण जैसे राष्ट्रीय मूल्य श्रृंखला वाले उद्योग मोटे तौर पर उच्च आय वाले राज्यों तक सीमित हैं।

हमें एक ऐसी राष्ट्रीय नीति की आवश्यकता है जो ऐसी मूल्य श्रृंखला को बढ़ावा दे जो देश के दक्षिण और पश्चिम के राज्यों को उत्तर और पूर्व के कम लागत वाले राज्यों से जोड़े, जहां से कम लागत में कच्चा माल जुटाया जा सके और असेंबलिंग का काम किया जा सके। इसके लिए छोटे और मझोले उपक्रमों को बढ़ावा देना होगा जो फिलहाल कम आय वाले राज्यों में बड़ी संख्या में हैं। परंतु सबसे अधिक आवश्यकता है कौशल विकास और इंजीनियरिंग शिक्षा की जिससे यह संभावना पैदा होगी कि उच्च आय वाले राज्यों के उपक्रम आकर्षित हो सकें।

यह मामला केवल समता का नहीं बल्कि राष्ट्रीय वृद्धि के लक्ष्य का भी है क्योंकि कामकाजी उम्र की आबादी में मध्यम अवधि की 75 फीसदी और दीर्घावधि की 90 फीसदी वृद्धि उत्तर के राज्यों में होगी। अगर हम उत्तर भारत के राज्यों में आय और वृद्धि संभावनाओं में इजाफा करने में नाकाम रहे तो हमारा जनसांख्यिकीय लाभांश नुकसान में बदल जाएगा और यह राजनीतिक अस्थिरता को बढ़ावा देने वाला साबित हो सकता है।

जनसत्ता

Date:17-01-24

हकीकत के बरक्स

संपादकीय

इसमें कोई दो राय नहीं कि पिछले कुछ सालों में देश में विकासात्मक गतिविधियों को लेकर सक्रियता दिखती है और उसी मुताबिक जमीनी स्तर पर बदलाव भी आ रहे होंगे। इस लिहाज से देखें तो नीति आयोग की ताजा रिपोर्ट को एक उम्मीद की तरह देखा जा सकता है, जिसमें देश में बीते नौ वर्षों में 24.82 करोड़ लोगों के बहुआयामी गरीबी के दायरे से बाहर आने का दावा किया गया है। जिस दौर में दुनिया भर में तमाम विकासशील देशों से लेकर विकसित देश भी कई मोर्चों पर व्यापक आर्थिक उथल-पुथल और मंदी से दो-चार हैं, उसमें भारत में करीब पच्चीस करोड़ लोगों के गरीबी रेखा से बाहर आने की खबर आती है तो यह अच्छी बात है। सवाल है कि अगर इतने लोगों की जिंदगी में उल्लेखनीय बदलाव आए हैं और अलग-अलग पैमानों पर उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार आया है तो सार्वजनिक स्तर पर यह दिखता क्यों

नहीं है। गौरतलब है कि बहुआयामी गरीबी को स्वास्थ्य, शिक्षा और जीवन-स्तर में सुधार की कसौटी पर मापा जाता है और ये बारह सतत विकास लक्ष्यों से संबंधित संकेतकों के जरिए दर्शाए जाते हैं।

नीति आयोग के परिचर्चा पत्र में एक आकलन के मुताबिक, देश में बहुआयामी गरीबी 2013-14 में 29.17 फीसद थी, वह 2022-23 में 11.28 फीसद रह गई। इस रपट में एक खास पहलू यह है कि उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्यप्रदेश ऐसे राज्य रहे, जिनमें गरीबी में सबसे ज्यादा कमी दर्ज की गई। इसे एक उपलब्धि के तौर पर देखा जा सकता है। देश की आजादी के बाद घोषित तौर पर सभी सरकारों का मुख्य जोर गरीबी दूर करने पर ही रहा और इस समस्या को दूर करने के अनेक दावे किए गए, लेकिन जमीनी हकीकत कुछ और रही। जाहिर है, इस मसले पर उठाए गए कदम अपर्याप्त थे। अब अगर बहुआयामी गरीबी के दायरे से भारी तादाद में लोगों के बाहर आने के आंकड़े सामने आए हैं तो स्वाभाविक ही नीति आयोग ने इसका श्रेय भी सरकार की ओर से उठाए गए कदमों को दिया है। देश में विकास के लिए जो आर्थिक पैमाने माने जाते हैं, उसमें खासी संख्या में लोगों के बहुआयामी गरीबी के दायरे से बाहर आना एक सकारात्मक बदलाव है। सवाल है कि अगर इतनी बड़ी तादाद में लोग अभाव और गरीबी की दलदल से निकल कर बेहतर जीवन-स्तर जीने लगे हैं, तो जमीन पर यह क्यों नहीं दिखता है।

कोरोना महामारी के बाद, पिछले दो-तीन वर्षों से खुद सरकार की ओर से अक्सर यह दावा किया जाता है कि करीब अस्सी करोड़ लोगों को मुफ्त राशन मुहैया कराया जा रहा है। किसी भी सामाजिक तबके को अगर पेट भरने के लिए मुफ्त भोजन की व्यवस्था की जा रही है, तो इसकी कसौटी गरीबी ही होगी। अगर इतनी बड़ी आबादी गरीब होने के नाते मुफ्त राशन की हकदार मानी जा रही है तो वे कौन लोग हैं, जो गरीबी रेखा के दायरे से बाहर आ रहे हैं? इसके अलावा, बेरोजगारी के मोर्चे पर स्थिति यह है कि बड़ी संख्या में लोगों के सामने जीवनयापन की चुनौती मुंह बाए खड़ी है। गरीबी रेखा के पैमाने और इसके तहत निर्धारित शर्तों के बरक्स हकीकतें छिपी नहीं हैं। जरूरत इस बात की है कि आर्थिक जटिलताओं के समांतर विकास के ऐसे उपाय जमीनी स्तर पर किए जाएं, जिससे अगर गरीबी कम हो रही हो, लोग इसकी जकड़बंदी से बाहर आ रहे हों तो वह प्रत्यक्ष दिखे भी।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:17-01-24

ताकि सागर में भी सुरक्षित रहे देश

शेखर सिन्हा, (सेवा.वाइस एडमिरल, नौसेना)

अदन की खाड़ी में होने वाली समुद्री डकैती का पिछले पखवाड़े भारतीय नौसेना ने जिस साहस से मुंहतोड़ जवाब दिया, उससे बेशक हमारा उत्साह बढ़ा है, लेकिन इस घटना ने समुद्री सुरक्षा की चुनौतियों को फिर से सतह पर ला दिया है। प्रशांत महासागर, हिंद महासागर और अटलांटिक महासागर से भारत ही नहीं, दुनिया के तमाम देशों का व्यापार होता है। सस्ता परिवहन होने के कारण विश्व का करीब 80 फीसदी व्यापार समुद्री रास्तों से ही होता है। भारत भी जितने मूल्य का अंतरराष्ट्रीय कारोबार करता है, उसका तकरीबन 70 फीसदी व्यापार समुद्र से होता है।

इसमें भी हिंद महासागर इसलिए अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि यहां खाड़ी के देश हैं, जहां विश्व की 60-70 फीसदी हाइड्रोकार्बन ऊर्जा निकलती है। चूंकि दुनिया के तमाम मुल्क यहां से ऊर्जा आयात करते हैं, और इसके लिए वे समुद्री रास्तों का इस्तेमाल करते हैं, इसलिए समुद्री डाकुओं की नजर यहां बनी रहती है। सवाल यह है कि जब सभी शक्तिशाली देशों की नौसेना यहां मुस्तैद रहती है, तब भी समुद्री लुटेरे अपनी मंशा में कैसे सफल हो जाते हैं?

दरअसल, हिंद महासागर में आने-जाने के लिए मुख्यत: तीन रास्ते हैं- मलक्का जलडमरूमध्य, अदन की खाड़ी और हॉर्मुज जलडमरूमध्य। ये तीनों संकीर्ण रास्ते हैं। यहां से गुजरने के लिए मालवाहक जहाजों को अपनी रफ्तार धीमी करनी पड़ती है। मलक्का जलडमरूमध्य की कुछ जगहों को छोड़ दें, जहां आने-जाने वाले जहाज काफी करीब होकर एक साथ गुजर सकते हैं, बाकी इलाकों में दोनों तरफ के जहाज एक साथ नहीं चल सकते। इसीलिए डाकुओं को अपना काम करने में आसानी होती है। इन मालवाहक जहाजों पर घातक हथियार भी नहीं होते और लुटेरे ऐसे हथियारों से लैस होते हैं, जिसके कारण उनके लिए मालवाहक जहाजों पर कब्जा करना आसान हो जाता है।

आंकड़े बताते हैं कि हर साल 1.6 लाख से लेकर 1.7 लाख मालवाहक जहाज अदन की खाड़ी और मलक्का जलडमरूमध्य के रास्ते हिंद महासागर से गुजरते हैं। यह मार्ग प्रशांत महासागर को अटलांटिक से जोड़ता है। ये जहाज विश्व के समुद्रों और महासागरों के उपयोग के लिए बने अंतरराष्ट्रीय ढांचे संयुक्त राष्ट्र समुद्री कानून संधि (यूएनसीएलओएस) के तहत आते-जाते हैं। ऐसा नहीं है कि यहां की संवेदनशीलता से दुनिया अनजान है। बड़ी ताकतें इसकी महत्ता को देखकर ही अपने युद्धपोत यहां तैनात रखती हैं और पलटवार भी करती हैं। इसी क्रम में पिछले दिनों अमेरिका और ब्रिटेन की नौसेना ने हूती ठिकानों पर हमले किए थे, जिससे यहां हलचल काफी तेज हो गई है।

भारतीय नौसेना को यहां काफी अहमियत मिली हुई है। हम वैश्विक उद्देश्यों के तहत अपने रक्षा-कर्तव्यों का पालन करते हैं। हम यह नहीं देखते कि किस देश का जहाज संकट में है। यही कारण है कि जनवरी के पहले हफ्ते में जब सोमालिया के डाकुओं ने लाइबेरिया के मालवाहक जहाज को अपने कब्जे में ले लिया, तो सूचना पाते ही आईएनएस चेन्नई ने मोर्चा संभाल लिया और तमाम क्रू मेंबर सकुशल 'छुड़ा लिए गए, जिनमें 15 भारतीय भी थे। हमारी नौसेना इस व्यापार-मार्ग पर इसी तरह चौकसी करती है। आकलन है कि फिलहाल हमारे आठ से 10 युद्धपोत अरब सागर में निगरानी के कामों में जुटे हैं।

मालवाहक जहाजों पर कब्जा या क्रू मेंबर के अपहरण के साथ-साथ समुद्र में यूएवी, यानी मानव रहित हवाई वाहन से हमले का खतरा भी बना रहता है। इसका इस्तेमाल डाकू भी कर सकते हैं व विरोधी देश भी। कहा जाता है कि दुश्मन

देश यूएवी का इस्तेमाल करके भारतीय हितों को चोट पहुंचा सकते हैं। दिक्कत यह है कि ये कहां से दागे जा रहे हैं, इसका पता लगाना 'मुश्किल होता है, क्योंकि अरब सागर करीब 1,500 किलोमीटर चौड़ा है और किसी एक देश के लिए इस पूरे क्षेत्र पर निगरानी करना आसान नहीं।

हमें समुद्र में चीन की विस्तारवादी नीतियों से भी चुनौती मिलती है। दक्षिण चीन सागर या काला सागर में भारत को भले सीधा नुकसान न हो, लेकिन चीन की मौजूदगी अब हिंद महासागर में भी बढ़ने लगी है, जिससे उसकी नीतियों का पता चलता है। चीन पैसों के बल पर हमारे पड़ोसी देशों को प्रभावित करने में जुटा है। वह भारत को घेरना चाहता है। श्रीलंका का हंबनटोटा बंदरगाह तो उसके हिस्से आ ही गया है, कोलंबो बंदरगाह तक भी उसके जहाज आने लगे हैं। ग्वादर में उसकी उपस्थिति है। म्यांमार में क्याउकफ्यू बंदरगाह उसके हाथों में है। वियतनाम की नई सरकार पर उसका प्रभाव स्पष्ट है। ऐसे में, हमें न सिर्फ अच्छे पड़ोसी का अपना कर्तव्य पूर्ववत निभाना होगा, बल्कि अतिरिक्त सतर्कता भी बरतनी होगी।

हम कुछ क्षेत्रों में खुद को और मजबूत बना सकते हैं। मिसाल के तौर पर, हमें अपनी नौसेना को और कुशल बनाना होगा। समय के साथ चूंकि चुनौतियां बढ़ती जा रही हैं, इसलिए भारतीय नौसेना को समुद्री गश्ती विमान- एमपीए दिए जाने चाहिए। एमक्यू-9 ड्रोन की खरीद भी जल्दी से जल्दी होनी चाहिए, क्योंकि यह एक घातक यूएवी है, जिससे निगरानी में काफी सुधार आने की संभावना है। हमें अन्य देशों से भी सहयोग अधिकाधिक बढ़ाना होगा, जिसके लिए 'कोलंबो सुरक्षा कॉन्क्लेव' को मजबूत करना आवश्यक है। यह कॉन्क्लेव दरअसल भारत, श्रीलंका और मालदीव के बीच त्रिपक्षीय सुरक्षा को लेकर बनाया गया था। खुफिया सूचनाओं को अधिक से अधिक साझा करने के प्रयास भी किए जा सकते हैं।

समुद्री सुरक्षा के लिए एक अंतरराष्ट्रीय प्रयास संयुक्त राष्ट्र द्वारा भी हो सकता है। जिस तरह से संयुक्त राष्ट्र शांति सेना का गठन किया गया है, कुछ वैसी ही कोशिश समुद्री सुरक्षा के लिए एक सामूहिक सेना बनाकर की जा सकती है। इस 'संयुक्त राष्ट्र समुद्री सुरक्षा बेड़ा' का मकसद उन क्षेत्रों में चौकसी करना होना चाहिए, जो काफी संवेदनशील हैं। इसका दायित्व दुनिया के तमाम जहाजों को सुरक्षा मुहैया कराना होना चाहिए। आज लाल सागर से मालवाहक जहाज नहीं गुजरते। इसके बजाय वे नीचे होकर दक्षिण अफ्रीका के 'केप ऑफ गुड होप' होकर जाना पसंद करते हैं, जिससे उनको करीब 20 फीसदी अधिक ईंधन और समय खर्च करना पड़ता है। अगर संयुक्त राष्ट्र पहल करे, तो विश्व व्यापार पर पड़ने वाला 20 फीसदी का यह अतिरिक्त बोझ खत्म किया जा सकता है।